International Journal of Advanced Research and Development
ISSN: 2455-4030
Impact Factor: RJIF 5.24
www.advancedjournal.com
Volume 2; Issue 5; September 2017; Page No. 818-819

शिक्षा केन्द्र के रूप में नालन्दा का ऐतिहासिक महत्व : एक विवेचन

सत्येन्द्र कुमार सिंह
शोध छात्र, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत।

प्रस्तावना

'प्राचीन काल के उत्तरार्द्ध में नालन्दा विश्वविद्यालय अभूतपूर्व ख्याति प्राप्त कर चुका था। जहाँ बौद्ध धर्म और 'दर्शन' की 'शिक्षा' के अतिरिक्त अन्यान्य विषयों की भी शिक्षा दी जाती थी।[1] वर्तमान बिहार प्रदेश की राजधानी पटना से लगभग 50 मील की दूरी पर यह स्थल अवस्थित है। प्राप्त साहित्यिक एवं पुरातात्विक साक्ष्यों से स्पष्ट होता है कि इस स्थल की विशेष रूप से ख्याति महात्मा बुद्ध के समय में हुई। बुद्ध ने यहाँ के आम्रवन में काफी समय व्यतीत किया तथा अपने शिष्यों को धर्म–दर्शन की शिक्षा भी प्रदान की। बुद्ध के प्रिय शिष्य सारिपुत्र की जन्मस्थली नालन्दा ही रही है। 500 श्रेष्ठियों ने मिलकर लगभग 10 करोड़ मुद्राओं से इस परिक्षेत्र को खरीदकर महात्मा बुद्ध को अर्पित किया था। कालान्तर में मौर्य नरेश अशोक ने यहाँ पर एक विशाल विहार का निर्माण भी करवाया था।

प्रारम्भिक काल में यह ब्राह्मण शिक्षा का केन्द्र था। इसकी प्रमुखता में तब वृद्धि हुई जब बौद्ध विद्वान दिङ्नाग ने ब्राह्मण विद्वान दुर्गम को शास्त्रार्थ में परास्त किया। अनेक गुप्त राजाओं के प्रोत्साहन और सहयोग से अल्पकाल में ही इसकी प्रतिष्ठा स्थापित हो गयी। कुमार गुप्त प्रथम ने यहाँ पर एक वृहद् विहार का निर्माण करवाया। बृद्धगुप्त, तथागत गुप्त, नरसिंह गुप्त, बलादित्य आदि गुप्त शासकों ने अपना संरक्षण प्रदान कर इसके विकास में योगदान किया। सुदीर्घ काल तक यहाँ का विशाल मंदिर ही संघ का मुख्य उपासना गृह बना रहा।

'खुदाइयों से प्रकट हुआ है कि नालन्दा विश्वविद्यालय कम से कम 1 मील लम्बा और 1/2 मील चौड़ा था। पूर्वनिश्चित योजनानुसार ही विहार और तत्सम्बद्ध स्तूपों का निर्माण हुआ था। इनका निर्माण एक पंक्ति में निश्चित दूरी पर हुआ था, मनमाने ढंग पर नहीं।'[2] सबसे बड़ा विहार 203 फिट लम्बा एवं 164 फिट चौड़ा था। सामान्य कक्ष 9 से 12 फिट लम्बे होते थे। यशोवर्मन के एक लेख से विदित होता है कि यहाँ के विहारों की शिखर श्रेणियाँ गगनस्थ मेघों का चुम्बन करती थीं। अनेक जलाशयों में कमल तैरते थे। उत्खनन से प्राप्त भग्नावशेषों से विदित होता है कि 7 विश्वविद्यालय कक्ष और 300 छोटे–बड़े कक्ष बने हुए थे। शिक्षार्थी छात्रावासों में रहते थे, जिसके प्रत्येक कोण पर कूप बने हुऐ थे। अधिकतर विहारें दो मंजिलाा होती थीं। प्रत्येक विद्यार्थी को शयन हेतु पत्थर की एक चौकी, दीपक रखने के लिए ताखें बने होते थे। उत्खनन से प्राप्त कुएँ से समुचित जल प्रबन्धन की बात स्थापित होती है।

विश्वविद्यालय को प्राप्त ग्रामों (दान में) की आय से अध्येताओं तथा शिक्षकों का भरण–पोषण होता था। 'हर धर्म हर अध्यापक, ये सब हमें यह बताने में लगे हैं कि हम क्या करे, क्या सोचें, क्या आशाएँ रखें।'[3] संख्या में प्रवेश पाने के लिए जटिल और तार्किक प्रवेश प्रक्रिया का नियोजन किया गया था। जो हर प्रकार से विद्यार्थी को रचनात्मक बनाने में सहयोग करते थे। सर्वप्रथम छात्र को द्वार पंडित से वाद–विवाद करना पड़ता था। तथा उनकी शंकाओं का समाधान भी करना पड़ता था। प्रवेश की पहली परीक्षा में ही अधिकांश परीक्षार्थी अनुत्तीर्ण हो जाते थे। विभिन्न विषयों के अनेक विद्वान वहाँ उपस्थित थे। ये विद्वान महज अपने अध्ययन–अध्यापन से ही संतुष्ट नहीं रहते थे, अपितु, अनेक उपयोगी ग्रन्थों की रचना भी करते थे। नागार्जुन, धर्मपाल, शीलभद्र, ह्वेनसांग और स्थिरमति आदि अनेकानेक विद्वानों का सम्पर्क इसी प्रबुद्ध परम्परा से रहा है। इत्सिंग के समय विद्यार्थियों की संख्या 3000 थी जो कालान्तर में ह्वेनसांग के समय बढ़कर 10000 हो गई थी। शिक्षकों की संख्या लगभग 1510 थी, जिसमें 1010 सूत्र निकायों में तथा शेष 500 अन्य विषयों में दक्ष थे। ह्वेनसांग के काल में यहाँ का कुलपति शीलभद्र थे, जो अनेक विषयों के ज्ञाता थे। देश–विदेश से जिज्ञाषु विद्यार्थी विभिन्न विषयों की शिक्षा प्राप्त करने के निहितार्थ से यहाँ आते थे। नालन्दा के पथ से आकृष्ट होकर आने वाले विदेशी विद्याथियों में मुख्यतः चीन, कोरिया, और तिब्बत से सम्बन्ध रखते थे। ये सभी नालन्दा में रहकर न केवल शिक्षा प्राप्त करते थे, बल्कि पाण्डुलिपियों की प्रतिलिपियाँ भी तैयार करते थे। ज्येष्ठ और कनिष्ठ भिक्षुओं के मध्य परस्पर एक–दूसरे की सहायता करने का उल्लेख मिलता है। 'न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग मीमांसा, वेदांत, पानी षड्दर्शन से संबंधित तमाम दार्शनिक ग्रंथ तथा पुस्तकें जो संस्कृत में थीं, इन पुस्तकालयों में उपलब्ध थीं।'[4] तीन भवनों से मिलकर नालन्दा के भव्य पुस्तकालय का निर्माण हुआ था। जिन्हें क्रमशः रत्नसागर, रत्नरंजक तथा रत्नोदधि की संज्ञा से संबोधित किया जाता था। यहाँ की शैक्षिक महत्ता इस तथ्य से भी प्रमाणित होती है कि जो शिक्षार्थी यहाँ के नहीं रहते थे, वे भी अपना महत्व स्थापित करने के लिए नालन्दा के विद्यार्थी होने का मिथ्या दावा पेश करते थे, ताकि तत्कालीन समाज उन्हें आदर और सम्मान प्रदान करे। इत्सिंग ने स्वयं अपने वर्णन में लिखा है कि ''मुझे इस बात से अत्यधिक प्रसन्नता है कि जो ज्ञान हमें यहाँ प्राप्त करने का अवसर मिला, वह अन्यत्र संभव नहीं था।''

यद्यपि नालन्दा में हीनयान एवं महायान दोनों शाखा से सम्बन्धित पाठ्यक्रमों का अध्ययन–अध्यापन होता था, किन्तु महायान शाखा की प्रधानता थी। विहारों का निर्माण महायानों से संदर्भित है। ह्वेनसांग ने अनेक ऐसे आचार्यों का उल्लेख किया हैं, जिनकी

विद्वता से प्रभावित होकर शिक्षार्थी यहाँ आकर्षित होते थे। धर्मपाल, चन्द्रपाल, गुणमति, प्रभामित्र, जिनमित्र आर्यदेव, ज्ञानचन्द्र आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। पालि साहित्य का अध्यापन हीनयान शाखा के प्रभाव का उदाहरण है, क्योंकि अधिकतर हीनयानी साहित्य पालि भाषा में ही रचित है। आर्यदेव, दिङ्नाग दक्षिण भारत, धर्मपाल कोची, तथा शीलभद्र समतट (बंगाल) के निवासी थे। स्थिरमति एवं गुणमति बलभी के रहने वाले थे। इस प्रकार विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों के विद्वान अपनी ज्ञान धारा का संगम इस ऐतिहासिक स्थल पर निर्मित करते थे।

विद्यालय में सरल से कठिन एवं 'स्थूल से सूक्ष्म की ओर' इस मनोविज्ञान के शिक्षण सिद्धान्त के अनुसार स्वच्छता, व्यवस्थाप्रियता, समयशीलता, अनुशासन पालन, शिष्टाचार, परस्पर सहयोग एवं उत्तरदायित्व की भावना आदि स्थूल एवं सरल गुणों का विकास सहपाठ्य क्रियाकलापों के माध्यम से प्रारम्भ किया जाना चाहिए।'[5] उपर्युक्त मत के आलोक में नालन्दा की पाठ्यचर्या एवं दिनचर्या अनुकरणीय एवं आदर्श प्रतीत होती है। नालन्दा से जुड़ी सभी प्रकार की व्यवस्था का प्रधान नियामक भिक्षु महास्थावर होता था, जो कोई प्रसिद्ध एवं कीर्तिवान भिक्षु होता था। संघ के सदस्य ही उसका निर्वाचन करते थे। निर्वाचन का मूल आधार चरित्र, प्रतिभा, विद्वता एवं वय जैसी योग्यतायें हुआ करती थी। प्रबंध एवं शिक्षा दो समितियाँ सहायक के तौर पर हुआ करती थीं। शिक्षा समिति का दायित्व शिक्षण संबंधी कार्यों से था तथा प्रबंध समिति आधारभूत आवश्यकताओं हेतु थीं।

9वीं शताब्दी में जावा–सुमात्रा के शासक बालपुत्र देव ने भी यहाँ एक विहार का निर्माण करवाया, तथा उसके वार्षिक खर्च हेतु बंगाल नरेश देवपाल को, (जो कि उसका परम मित्र था) 5 गाँव दान में देने के लिए प्रेरित किया था। 'तिब्बती विद्वान तारानाथ ने लिखा है कि विक्रमशिला के आचार्य को पाल शासकों द्वारा यहाँ का परीक्षक नियुक्त किया गया था।'[6] अन्य तिब्बती सूत्रों से ज्ञात होता है कि बौद्धों में तंत्र विद्या का अधिक प्रसार हो जाने के कारण यहाँ का अध्ययन एवं विमर्श बाधित हुआ, जो कालान्तर में उसकी अवनति का कारण बना। 12वीं शताब्दी के अन्त में मुस्लिम आक्रान्ता बख्तियार खिजली के विध्वंसक आक्रमणों ने ऊँची इमारतों को खंडहर बना दिया तथा चिंतन की धरती को चिता की स्थली श्मसान के रूप में परिवर्तित कर दिया। नालन्दा के शैक्षिक मूल्य आज भी वर्तमान शिक्षा व्यवस्था को मार्ग दिखाते हुए परिलक्षित होते है।

सन्दर्भ

1. मिश्र, जयशंकर, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, 2006, विहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, पृ0 540
2. अल्तेकर, ए0, एस0, प्राचीन भारतीय शिक्षण–पद्वति, 2014, अनुराग प्रकाशन, वाराणसी, पृ0 87
3. कृष्णमूर्ति, जे0, शिक्षा क्या है, 2016, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली पृ0 188
4. पाण्डेय, रामशकल, प्राचीन भारत के शिक्षा मनीषी, 2001, शारदा पुस्तक भवन इला0, पृ0 115
5. तोमर, लज्जाराम, भारतीय शिक्षा के मूल तत्व, 2013, सुरुचि प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 109
6. बसु कृत इंडियन टीचर्स ऑफ बुद्धिस्ट यूनिवर्सिटीज, पृ0 36